

दुर्खीम ने रहस्यवाद (mysticism), अधि-प्राकृतिकवाद (supernaturalism) और परम्परावाद (traditionalism) का सदैव विरोध किया तथा सामूहिकता और सामाजिक मूल्यों को सामाजिक जीवन का वास्तविक आधार माना। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि दुर्खीम सामाजिक घटनाओं की विवेचना में दार्शनिक आधार को अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। उन्हीं के शब्दों में, “समाजशास्त्र को दार्शनिक पूर्व-कल्पनाओं अथवा भावनाओं पर आधारित नहीं होना चाहिए चाहे वे किसी भी रूप में हों। समाजशास्त्र को दर्शनशास्त्र से अलग रखकर ही उसे विकसित किया जा सकता है।”

दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के अध्ययन के लिए सदैव वैज्ञानिक विधि के प्रयोग पर बल दिया। उनका मानना था कि जिस तरह प्राकृतिक घटनाएँ कुछ निश्चित नियमों के आधार पर घटित होती हैं, उसी प्रकार सामाजिक घटनाओं के घटित होने के भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। यदि इन नियमों को समझकर एक वैज्ञानिक विधि के द्वारा सामाजिक घटनाओं की विवेचना की जाये तो समाजशास्त्र भी एक निश्चित विज्ञान बन सकता है। इसके साथ ही दुर्खीम ने समाजशास्त्र की अध्ययन-वस्तु का भी निर्धारण किया। उन्होंने दूसरे विद्वानों से भिन्न विचार प्रस्तुत करते हुए श्रम-विभाजन को एक सामाजिक तथ्य मानते हुए उसके कारण तथा परिणामों की व्याख्या की। श्रम-विभाजन को उन्होंने सामाजिक एकता का आधार मानते हुए यह निष्कर्ष दिया कि यान्त्रिक एकता से सावयवी एकता की ओर होने वाला समाज का विकास श्रम-विभाजन का ही परिणाम है। दुर्खीम वह पहले समाजशास्त्री थे जिन्होंने अनुभाविक आधार पर आत्महत्या का अध्ययन करके इसका सामाजिक आधार पर विश्लेषण किया। धर्म के समाजशास्त्र के रूप में उन्होंने समाजशास्त्र की एक नयी शाखा विकसित की। दुर्खीम के इसी योगदान को स्पष्ट करते हुए हैरी एल्पर्ट (Harry Alpert) ने लिखा है, “दुर्खीम यदि समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के विकास के लिए एक वैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टिकोण न देते तो सामाजिक व्यवहारों को समझने के लिए एक विचारयुक्त और तार्किक पद्धति का व्यवस्थित प्रयोग सम्भव नहीं हो पाता।” इस सन्दर्भ में समाजशास्त्र के लिए दुर्खीम के योगदान को संक्षेप में निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

(1) समाजशास्त्र में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग (Use of Scientific Method in Sociology)—अपनी पुस्तक ‘समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम’ में दुर्खीम ने सबसे पहले यह स्पष्ट किया कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए एक वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करना आवश्यक है। दुर्खीम से पहले कॉस्ट तथा स्पेन्सर ने भी सामाजिक घटनाओं की विवेचना के लिए वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग पर जोर दिया था लेकिन दुर्खीम ने विभिन्न घटनाओं के कारण और परिणामों को समझने के लिए ऐतिहासिक और प्रयोगात्मक पद्धतियों को उपयुक्त नहीं माना। दुर्खीम ने तुलनात्मक विधि के प्रयोग को सबसे अधिक महत्व दिया। यह वह विधि है जिसके द्वारा समाज में घटित होने वाली विभिन्न घटनाओं की तुलना करके तथा एक घटना से दूसरी घटना के सह-सम्बन्ध को स्थापित करके उनके कारण को जानने का प्रयत्न किया जाता है। दुर्खीम ने लिखा कि इस पद्धति के उपयोग के लिए आवश्यक है कि किसी सामाजिक घटना की व्याख्या उसके सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश में की जाये तथा विभिन्न प्रकार के समाजों में किसी सामाजिक घटना का अध्ययन तुलनात्मक आधार पर किया जाये।

(2) समाजशास्त्र की अध्ययन-वस्तु का निर्धारण : सामाजिक तथ्य (Determination of Subject-matter of Sociology : Social Facts)—दुर्खीम वह पहले समाजशास्त्री थे जिन्होंने समाजशास्त्र को एक स्वतन्त्र रूप देने के लिए इसकी अध्ययन-वस्तु का निर्धारण किया। उनके अनुसार समाजशास्त्र की वास्तविक अध्ययन-वस्तु सामाजिक तथ्य (social facts) हैं। सामाजिक तथ्यों का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने के लिए दुर्खीम ने लिखा कि ‘पहला और सबसे मौलिक नियम यह है कि सामाजिक तथ्यों पर वस्तु के रूप में विचार किया जाये।’ इसका अर्थ है कि जिस प्रकार किसी वस्तु को उसी रूप में देखा जाता है जैसी कि वह वास्तव में है, उसी प्रकार सामाजिक घटनाओं अथवा तथ्यों का भी पक्षपात्रहीत होकर अवलोकन करना जरूरी है। सामाजिक तथ्यों को परिभाषित करते हुए दुर्खीम का कथन है, “सामाजिक तथ्य कार्य करने, विचार करने तथा अनुभव करने के वे तरीके हैं जो व्यक्ति की चेतना से बाहर स्थित होते हैं तथा जिनमें दबाव की इतनी क्षमता होती है कि वे व्यक्ति के व्यवहारों को नियन्त्रित करते रहते हैं।” इस प्रकार सभी नैतिक नियम, सामाजिक मर्यादाएँ, धार्मिक प्रतिमान, वैधानिक नियम, भाषा तथा आर्थिक व्यवस्था आदि सामाजिक तथ्यों के उदाहरण हैं। दुर्खीम के अनुसार सामाजिक तथ्यों को इनकी

दो प्रमुख विशेषताओं के आधार पर पहचाना जा सकता है—पहली विशेषता यह है कि यह व्यक्ति की चेतना और प्रभाव से बाह्य (exterior) होते हैं तथा दूसरी विशेषता यह है कि सामाजिक तथ्यों में बाध्यता का गुण होता है। सामाजिक तथ्य व्यक्ति से इसलिए बाह्य हैं कि यह किसी व्यक्ति की इच्छा के आधार पर नहीं बनते बल्कि इनकी उत्पत्ति स्वतन्त्र रूप से होती है। साथ ही यह इतने शक्तिशाली होते हैं कि व्यक्ति इन्हीं के अनुसार एक विशेष ढंग से व्यवहार करने के लिए बाध्य होता है। वास्तविकता यह है कि सामाजिक तथ्यों की प्रकृति सामूहिक होती है तथा इनकी उत्पत्ति व्यक्तियों की अन्तर्क्रियाओं के परिणामस्वरूप होती है। इसी कारण यह सामूहिक जीवन की स्थायी विशेषता बनकर व्यक्तियों की आदत के रूप में स्पष्ट होने लगते हैं।

अपनी पुस्तक 'द रूल्स' के दूसरे अध्याय में दुर्खीम ने उन नियमों की चर्चा की जिनकी सहायता से सामाजिक तथ्यों का वैज्ञानिक ढंग से अवलोकन करके समाजशास्त्र को वैज्ञानिक बनाया जा सकता है। इसके लिए पहला नियम यह है कि सामाजिक घटनाओं का यथार्थ रूप से अवलोकन करके वर्गीकरण व तुलना की सहायता से उनकी प्रकृति को समझा जाये। इसके लिए जरूरी है कि हम अपनी पूर्व-धारणाओं से प्रभावित न हों, व्यक्तिगत भावनाओं को कोई महत्व न दें, प्रत्येक सामाजिक तथ्य की बाह्य विशेषताओं को परिभाषित करें, विभिन्न घटनाओं का समुचित रूप से वर्गीकरण करें तथा उनकी पारस्परिक तुलना करके विभिन्न घटनाओं के कारणों और प्रकारों को समझने का प्रयत्न करें। पुस्तक के आगामी विवेचन में दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को दो भागों में विभाजित किया—(अ) सामान्य सामाजिक तथ्य, तथा (ब) व्याधिकीय सामाजिक तथ्य। सामान्य सामाजिक तथ्यों का तात्पर्य उन घटनाओं से है जो विभिन्न समाजों में लगभग निश्चित दर से घटित होती रहती हैं तथा जिनकी समाज को संगठित बनाने में एक उपयोगी भूमिका होती है। दूसरी ओर, जो तथ्य अथवा सामाजिक घटनाएँ सामाजिक मूल्यों के विरुद्ध होती हैं, उन्हीं को व्याधिकीय सामाजिक तथ्य कहा जाता है। दुर्खीम ने यह भी स्पष्ट किया कि विभिन्न समाजों में कौन-से सामाजिक तथ्य उपयोगी हैं, इसका निर्धारण वहाँ के मूल्यों तथा सामाजिक संगठन की प्रकृति के अनुसार होता है। इसलिए एक विशेष समाज की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए ही यह जाना जा सकता है कि किन सामाजिक घटनाओं को सामान्य माना जाय और किन्हें व्याधिकीय।

सामाजिक तथ्यों की वैज्ञानिक विवेचना के लिए दुर्खीम ने तीन नियम बताये। पहला नियम यह है कि किसी भी सामाजिक तथ्य की व्याख्या करते समय उसके कारण और प्रकार्य दोनों को ही स्पष्ट किया जाये। दूसरा नियम यह है कि किसी सामाजिक तथ्य का प्रकार्य जानने के लिए यह देखना जरूरी है कि वह किस सीमा तक हमारी सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करता है, व्यक्तिगत आवश्यकताओं को नहीं। इस प्रकार सामाजिक तथ्यों की विवेचना व्यक्तिगत इच्छाओं के सन्दर्भ में नहीं की जानी चाहिए। दुर्खीम के अनुसार सामाजिक तथ्यों की व्याख्या का तीसरा नियम यह है कि सामाजिक घटनाएँ जिन सामाजिक प्रक्रियाओं को जन्म देती हैं, उन प्रक्रियाओं की प्रकृति को एक समाज-विशेष के सामाजिक परिवेश में ही देखना जरूरी है। इसका तात्पर्य है कि सामाजिक परिवर्तन के कारणों को ऐतिहासिक अथवा उद्विकासीय आधार पर नहीं समझा जा सकता बल्कि इनकी व्याख्या एक विशेष सामाजिक परिवेश के आधार पर ही की जानी चाहिए। इस प्रकार सामाजिक तथ्यों की प्रकृति को विस्तार से स्पष्ट करके दुर्खीम ने समाजशास्त्र की अध्ययन-वस्तु का निर्धारण करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

(3) अपराध की नयी व्याख्या (New Interpretation of Crime)—साधारणतया सभी विद्वानों ने अपराध को एक विघटनकारी व्यवहार के रूप में स्पष्ट किया है। दुर्खीम ने बिल्कुल भिन्न विचार देते हुए एक बड़ी सामाजिक समस्या का निदान ढूँढ़ने का प्रयत्न किया। उन्होंने विस्तार से यह प्रमाणित किया कि अपराध एक सामान्य सामाजिक तथ्य है तथा यह एक स्वस्थ समाज का लक्षण है। उन्होंने तर्क दिया कि यह मानना गलत है कि अपराध से सामूहिक जीवन को सदैव हानि होती है। वास्तविकता यह है कि समाज की नैतिकता और उपयोगी कानूनों के विकास में अपराध का विशेष योगदान होता है। किसी समाज में जब अपराध होते हैं, तब वहाँ की सामूहिक भावना सामाजिक परिवर्तन के लिए तैयार हो जाती है। इसी से समाज में एक नयी नैतिकता का विकास होता है। एक उदाहरण के द्वारा इसे प्रमाणित करते हुए सुकरात ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर बल दिया जिसे उस समय अपराध मानकर सुकरात को दण्डित किया

गया। कुछ समय बाद सुकरात का वही अपराध एथेन्स में एक ऐसी नैतिकता को विकसित करने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ जो वैयक्तिक स्वतन्त्रता के पक्ष में थी। अपराध और दण्ड के सम्बन्ध को भी दुर्खीम ने भिन्न प्रकार से स्पष्ट किया। उनके अनुसार अपराध दण्ड व्यवस्था को पैदा नहीं करता बल्कि दण्ड व्यवस्था से अपराध पैदा होते हैं। किसी समाज में दण्ड व्यवस्था जितनी अधिक कठोर होती है, वहाँ अपराधों की दर उतनी ही अधिक हो जाती है। इसका तात्पर्य है कि दण्ड व्यवस्था सामाजिक न्याय तथा क्षतिपूर्ति के नियम पर आधारित होनी चाहिए, दमनकारी कानूनों पर आधारित नहीं। आधुनिक लोकतान्त्रिक समाजों में दुर्खीम के यह विचार बहुत व्यावहारिक और उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

(4) **श्रम-विभाजन का सिद्धान्त** (Theory of Division of Labour)—दुर्खीम से पहले अनेक विद्वानों, जैसे—एडम स्मिथ, स्पेन्सर तथा जॉन स्टुअर्ट मिल ने आर्थिक आधार पर श्रम-विभाजन की विवेचना की थी। इनके विपरीत, दुर्खीम ने श्रम-विभाजन का एक सामाजिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उनके अनुसार श्रम-विभाजन प्रत्येक युग में सभी समाजों की अनिवार्य विशेषता रही है। वास्तव में, श्रम-विभाजन का सम्बन्ध जनसंख्या के आकार में होने वाली वृद्धि से है तथा यह एक ऐसी नैतिक दशा है जिसके फलस्वरूप सामाजिक सम्बन्धों की प्रकृति में परिवर्तन होने लगता है। श्रम-विभाजन सामाजिक एकता को बढ़ाने वाला एक प्रमुख आधार है। जिस तरह समाज के नैतिक नियम सामाजिक संगठन में वृद्धि करते हैं, उसी तरह श्रम-विभाजन से भी पारस्परिक सहयोग, पारस्परिक निर्भरता, कर्तव्य भावना और व्यवितरण कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। श्रम-विभाजन से समाज में एक ऐसी एकता का विकास होता है जो स्वाभाविक और स्थायी होती है। सामाजिक परिवर्तन लाने तथा सामाजिक मूल्यों में समय के अनुकूल परिवर्तन उत्पन्न करने में भी श्रम-विभाजन का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसी के आधार पर उन्होंने यान्त्रिक तथा सावयवी एकता की अवधारणा को प्रस्तुत किया। इस प्रकार दुर्खीम ने श्रम-विभाजन के सामाजिक पक्ष को स्पष्ट करके सामाजिक विचारधारा को एक नया रूप दिया।

(5) **धर्म की समाजशास्त्रीय विवेचना** (Sociological Explanation of Religion)—अपनी पुस्तक 'धार्मिक जीवन के प्रारम्भिक स्वरूप' में दुर्खीम ने धर्म की उत्पत्ति तथा सामाजिक प्रकार्यों को सामाजिक आधार पर स्पष्ट करके धर्म की एक नयी विवेचना प्रस्तुत की। उन्होंने प्राकृतिक घटनाओं अथवा आत्मा सम्बन्धी विश्वासों के आधार पर धर्म की उत्पत्ति की आलोचना करते हुए लिखा कि यदि ईश्वर ही धर्म की उत्पत्ति का आधार होता तो धर्म के रूप में कभी कोई परिवर्तन नहीं हो पाता। उन्होंने ऑस्ट्रेलिया की अरुण्टा जनजाति (Arunta tribe) का आनुभविक अध्ययन करके यह बताया कि धर्म की उत्पत्ति तथा इसके प्रकार्यों को सामाजिक आधार पर ही समझा जा सकता है। वास्तव में, धर्म का सम्बन्ध कुछ वस्तुओं से और व्यवहारों को पवित्र मानने से है। विभिन्न अनुष्ठानों, निषेधों तथा विश्वासों के द्वारा पवित्र वस्तुओं से उन वस्तुओं को अलग रखा जाता है जिन्हें हम अपवित्र या साधारण (profane) मानते हैं। पवित्रता की धारणा ही समाज में उसकी सामूहिक चेतना को स्पष्ट करती है। उदाहरण के लिए, अरुण्टा जनजाति में लोग जिस वस्तु को अपना टोटम (Totem) मानते हैं, उसे पवित्र समझकर सदैव उसकी रक्षा करते हैं। टोटम उनकी सामूहिक चेतना को स्पष्ट करती है तथा टोटम के आधार पर ही अरुण्टा जनजाति के लोग एक नैतिक बन्धन से बँधे रहते हैं। इसका अर्थ है कि "धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित अनेक विश्वासों और आचरणों की वह व्यवस्था है जो अपने से सम्बन्धित लोगों को एक नैतिक समुदाय से जोड़ती है।" इस तरह धर्म का प्रकार्य समूह की एकता को बढ़ाना तथा अपने मानने वालों को अनुशासित व्यवहार करने की प्रेरणा देकर उनकी सामूहिक चेतना को बढ़ाना होता है। धर्म समाज में एक नैतिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाता है तथा सामाजिक एकीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन देता है। इस प्रकार धर्म एक विभेदकारी तथ्य नहीं है बल्कि सामाजिक संगठन में वृद्धि करने वाला एक प्रमुख आधार है।

(6) **प्रकार्यवाद की नवीन व्याख्या** (New Interpretation of Functionalism)—दुर्खीम से पहले अनेक मानवशास्त्रियों ने प्रकार्यवाद के आधार पर जनजातीय सामाजिक संगठन की विशेषताओं को स्पष्ट किया था। दुर्खीम ने प्रकार्यवाद को एक ऐसे रूप में स्पष्ट किया जिसे आज तक समाजशास्त्रियों द्वारा महत्वपूर्ण माना जाता है। दुर्खीम से पहले के विद्वान् किसी घटना अथवा विशेषता के लक्ष्य तथा उसके उद्देश्यों को स्पष्ट करने के लिए 'प्रकार्य' शब्द का प्रयोग करते थे। दुर्खीम का यह मानना था कि समाज अथवा सामाजिक घटनाएँ व्यक्तियों की इच्छा से बनती या उत्पन्न नहीं होतीं। इस दृष्टिकोण से 'प्रकार्य'

शब्द का प्रयोग प्रभाव (effect) के अर्थ में ही किया जा सकता है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक सामाजिक घटना का कोई-न-कोई प्रकार्य अवश्य होता है तथा यही प्रकार्य उसके अस्तित्व को बनाये रखता है। इस तरह सामाजिक घटनाओं के प्रकार्यों को समझकर ही उनके वैज्ञानिक रूप को समझा जा सकता है। किसी सामाजिक घटना के प्रकार्य को जानने का सबसे सरल तरीका यह है कि हम यह जान लें कि एक विशेष सामाजिक घटना समाज की सामान्य आवश्यकताओं को किस सीमा तक पूरा करती है। इस प्रकार टोटम का प्रकार्य पवित्रता की धारणा और समुदाय को एक नैतिक बन्धन में बाँधना है, जबकि श्रम-विभाजन का प्रकार्य विशेषीकरण को प्रोत्साहन देना और सावधानी एकता में वृद्धि करना है। इसी तरह अपराध का प्रकार्य एक नयी नैतिकता को विकसित करना होता है। यहाँ तक कि आत्महत्याएँ भी व्यक्ति की आत्म-अनुभूति (self-realisation) की आवश्यकता को पूरा करती हैं। इस प्रकार प्रकार्यवाद एक ऐसा आधार है जिसकी सहायता से विभिन्न सामाजिक घटनाओं के कारणों और परिणामों की विवेचना की जा सकती है।

(7) **मूल्यों की समाजशास्त्रीय विवेचना (Sociological Explanation of Values)**—दुर्खीम ने अपनी पुस्तक 'समाजशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र' में सामाजिक मूल्यों को दर्शनशास्त्र की विषय-वस्तु से अलग करके इनकी सामाजिक प्रकृति को स्पष्ट किया। आपके अनुसार, सामाजिक मूल्यों का जन्म सामूहिक विशेषताओं के आधार पर होता है तथा प्रत्येक सामाजिक मूल्य एक समुदाय के सामूहिक जीवन की विशेषता को ही स्पष्ट करता है। प्रत्येक समाज में जब कभी भी व्यवहार सम्बन्धी कुछ समस्याएँ पैदा होती हैं तो उनका समाधान करने के लिए कुछ ऐसे आदर्श नियम विकसित हो जाते हैं जो सामूहिक इच्छा का प्रतिनिधित्व करते हैं। यही आदर्श नियम सामाजिक मूल्यों का रूप ले लेते हैं। इस तरह सामाजिक मूल्यों का कार्य समुदाय में लोगों के व्यवहारों को नियमित बनाना और सामाजिक संगठन को सुदृढ़ करना होता है। सामूहिक जीवन में जो आदर्श नियम जितना अधिक उपयोगी होता है, उसे उतने ही महत्वपूर्ण सामाजिक मूल्य के रूप में देखा जाने लगता है। इस प्रकार सामाजिक मूल्यों के बीच भी उपयोगिता के आधार पर एक संस्तरण विकसित हो जाता है। दुर्खीम यह मानते हैं कि विभिन्न मूल्यों के आधार पर किसी समुदाय के सामूहिक जीवन की विशेषताओं को भी सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

उपर्युक्त योगदान के अतिरिक्त 'सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा' को विकसित करना तथा 'ज्ञान के समाजशास्त्र' के रूप में समाजशास्त्र की एक नयी शाखा की प्रारम्भिक रूपरेखा प्रस्तुत करना भी समाजशास्त्र को दुर्खीम द्वारा दिया जाने वाला एक महत्वपूर्ण योगदान है। इसी योगदान के कारण कुछ विद्वान् यहाँ तक मानते हैं कि कॉम्स यदि समाजशास्त्र के जनक हैं तो दुर्खीम को समाजशास्त्र के पितामह के रूप में देखा जाना चाहिए।

सामाजिक तथ्य की अवधारणा

(CONCEPT OF SOCIAL FACT)

दुर्खीम ने यह स्पष्ट किया कि समाजशास्त्र में सामाजिक तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। इससे पहले किसी भी विद्वान् ने सामाजिक तथ्य को वैज्ञानिक रूप से समझने का प्रयास नहीं किया था। दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य को परिभाषित करते हुए लिखा है, "सामाजिक तथ्य व्यवहार करने, विचार करने, अनुभव करने या क्रिया करने का कोई भी वह ढंग है जिसका वस्तुनिष्ठ रूप से अवलोकन किया जा सकता है तथा जो व्यक्ति को एक विशेष ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करता है।" इस दृष्टिकोण से हमारे विभिन्न धार्मिक विश्वास, नैतिक नियम, लोक गाथाएँ तथा व्यवहार के विभिन्न ढंग सामाजिक तथ्य के उदाहरण हैं। दुर्खीम ने आगे लिखा है कि "सामाजिक तथ्यों का सम्बन्ध कार्य करने, विचार करने और अनुभव करने के उन सभी तरीकों से है जो व्यक्ति के लिए बाह्य होते हैं तथा जो अपनी दबाव-शक्ति के द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों को नियन्त्रित करते हैं।" इसका आशय यह है कि सामाजिक तथ्यों में दो विशेषताएँ मुख्य होती हैं—बाह्यता (exteriority) तथा बाध्यता (constraint)। इन विशेषताओं के आधार पर सामाजिक तथ्यों की प्रकृति को निर्मांकित रूप से समझा जा सकता है :

(1) सामाजिक तथ्यों में बाह्यता का गुण होता है—यह सच है कि विभिन्न प्रकार के सामाजिक तथ्यों का निर्माण व्यक्तियों के द्वारा ही किया जाता है लेकिन एक बार जब कोई सामाजिक तथ्य विकसित हो जाता है तो फिर उसका अस्तित्व व्यक्ति से स्वतन्त्र हो जाता है। इसे स्पष्ट करने के लिए दुर्खीम ने बताया कि सामाजिक तथ्यों का निर्माण सामूहिक चेतना से होता है। यह सामूहिक चेतना व्यक्तिगत चेतना से